

राजनीतिक समाजीकरण और बच्चे

(आमचुनाव-2019 के विशेष संदर्भ में)

ऋषभ कुमार मिश्र

पिछले तीन-चार महीनों* से देश में आम चुनाव की सरगर्मी थी। इस सरगर्मी में सभी राजनीतिक दल, मीडिया और चुनाव में रुचि रखने वाली संस्थाएं मतदाताओं के चुनावी व्यवहार का आकलन कर रहे थे। हर वयस्क अपने-अपने ढंग से लोकतंत्र के इस पर्व के बारे में राय दे रहा था। यह चुनावी माहौल एक ओर देश की आनेवाली सरकार के लिए दिशा तय कर रहा था वहीं यह भी बताना महत्वपूर्ण है कि इनके द्वारा हमारे देश की भावी पीढ़ी का राजनीतिक समाजीकरण हो रहा था। इस दौरान विचारधारात्मक बहसों, राजनीतिक सूचनाओं की उपलब्धता, चुनावी संप्रेषण की अधिकता, परिवार और समुदाय की राजनीतिक सक्रियता और चुनाव प्रचार आदि द्वारा बच्चे और किशोर अपनी राजनीतिक समझ और अभिवृत्ति को ढाल रहे थे। एक ओर तो बच्चों को स्कूलों में सरकार, लोकतंत्र, चुनाव और कानून का संवैधानिक पाठ पढ़ाया जाता है तो दूसरी ओर बच्चे अपने रोजमर्रा के जीवन में इनके एक अलग रूप को देख रहे थे। यह रूप न तो कृत्रिम था और न ही ऐसा जो केवल वयस्कों के लिए हो और जिससे बच्चों को दूर रखने का कोई औपचारिक निर्देश हो। इस रूप में देश की राजनीति, राजनेता, लोकतंत्र की प्रक्रिया आदि से संबंधित संदेशों का संप्रेषण हो रहा था। एक तरह से ये चुनाव बच्चों में राजनीतिक समझ के संप्रेषक थे जो इनमें राजनीतिक दृष्टि और सूझ-बूझ को विकसित कर रहे थे। इसे ही समझने के लिए मैंने 10 से 16 वर्ष के विद्यार्थियों के साथ 8 केन्द्रित समूह चर्चा की। ये विद्यार्थी महाराष्ट्र के वर्धा जिले के रहने वाले थे। हालांकि ये इस चुनाव में मतदाता नहीं थे लेकिन अगले आमचुनाव में इनमें से अधिकांश मतदाता बन चुके होंगे। ये सभी ग्रामीण और कस्बाई पृष्ठभूमि के विद्यार्थी थे। इनमें से अधिकांश सरकारी विद्यालयों के छात्र थे। कुछ समूह में कम फीस वाले निजी विद्यालयों के विद्यार्थी भी शामिल थे। ये चर्चाएं वर्धा में मतदान के पूर्व अवकाश के दिनों में की गईं। इसके लिए खेल के मैदान और अन्य सामुदायिक स्थानों को चुना गया। प्रत्येक समूह चर्चा लगभग 40 से 50 मिनट की रही। हर समूह चर्चा की ऑडियो रिकॉर्डिंग की गई। इसके आधार पर प्राप्त प्रमुख प्रवृत्तियों की इस लेख में चर्चा की गई है।

चुनाव: प्रक्रिया, प्रत्याशी और अन्य प्रवृत्तियां

समूह चर्चा के भागीदारों के विचार बताते हैं कि वे लोकसभा चुनावों को 'सरकार' को चुनने की प्रक्रिया मानते हैं। इस प्रक्रिया को वे संसदीय लोकतंत्र की शब्दावली- खासदार (सांसद), पंतप्रधान (प्रधानमंत्री) के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं। वे भारत की संसदीय राजनीति को दलीय राजनीति के रूप में देख रहे हैं। उनके अनुसार इस बार का चुनाव दो मुख्य राजनीतिक दलों और गठबंधनों के बीच है। खासकर इसे वे दो

* अप्रैल, 2019 से मई, 2019 तक आम चुनाव का समय रहा है।

नेताओं नरेन्द्र मोदी और राहुल गांधी के बीच के 'युद्ध' के रूप में रेखांकित करते हैं। आश्चर्य है कि लोकतंत्र की स्वाभाविक प्रक्रिया के लिए ये बच्चे इतना घोर या चरम विशेषण 'युद्ध' क्यों उपयोग कर रहे हैं? इसका कारण उनके परिवेश में इसी विशेषण के साथ चुनाव की प्रस्तुति है। इस स्थिति में चुनाव की प्रस्तुति संसदीय लोकतंत्र में स्वतंत्र मत के प्रयोग के बदले भेड़चाल की ओर ले जाती है जहां मतदान औचित्य के आधार पर न होकर मताधंता के आधार पर होता है। इस दशा में ध्रुवीकरण को बल मिलता है। इसका प्रभाव बच्चों में भी दिखा। यद्यपि इन बच्चों ने किसी विचारधारा विशेष का नाम नहीं लिया लेकिन वे लोकप्रिय नारों 'न्याय', 'आएगा तो मोदी ही' 'मां शीश नहीं झुकने देंगे' का उल्लेख कर विचारधारात्मक झुकाव की ओर संकेत कर रहे थे। कई बार वे किसी पार्टी विशेष या नेता विशेष के पक्ष में राय जाहिर करते लेकिन उनके पास अपने चुनाव के लिए तर्कों का अभाव था। अक्सर वे भावोद्रेक में अपने विचार व्यक्त करते जहां दूसरे के प्रति पूर्वाग्रह अधिक रहता था। हर समूह की चर्चा में पाकिस्तान को मुंहतोड़ जवाब देना, वंशवाद, हिंदू धर्म, नोटबंदी, बेरोजगारी जैसे लोकप्रिय सवाल-जवाब आए ही। यहां रेखांकित करना आवश्यक है कि विद्यार्थियों के विचार एक नागरिक के विवेक का परिचय न होकर दल विशेष के अनुयायियों के रूप में अधिक थे। उन्हें 'सूचनात्मक ज्ञान' तो था लेकिन वे इसके आधार पर निर्णय न लेकर चुनावी माहौल के न दिखने वाले दबाव में अपनी राय जाहिर कर रहे थे। वयस्कों के संदर्भ में इसे दलीय प्रतिबद्धता कहा जा सकता है लेकिन बच्चों और किशोरों के संदर्भ में एमलर और फ्रेजर (1999) इसे 'वयस्क व्यवहार का अनुकरण' मानते हैं जिसके प्रभाव में व्यक्ति स्वतंत्र निर्णय नहीं ले पाता है। इसी तरह कुछ विद्वान (सीअर्स और वैलिंग्टीनो, 1997) इसे अभिभावकों के राजनीतिक विश्वासों की पुनरावृत्ति भी मानते हैं। इस अर्थ में यह प्रवृत्ति खतरनाक है कि यह व्यक्ति के खुद से फैसला लेने के बदले किसी के लिए फैसले की पुनरावृत्ति को बल देती है।

इन विद्यार्थियों के साथ हुई चर्चा से पता चलता है कि वे चुनाव को लोकतंत्र से जोड़कर देखते हैं। उनके लिए यह व्यक्ति का अधिकार है जिससे वह अपनी सरकार चुनता है। इस समझ के साथ उनका यह जोड़ना महत्वपूर्ण है कि 'उन्हें (नेताओं को) गांव वालों से कोई लेना-देना नहीं, चुनाव जीतना है और चले जाना है'। इस तरह की राय बताती है कि उनके लिए स्थानीय प्रत्याशी किसी कुतुहल या जिज्ञासा का विषय नहीं है बल्कि वे 'केन्द्र' के नेता को ध्यान में रख रहे हैं। लोकसभा का चुनाव होने के कारण यह प्रवृत्ति आम है। लेकिन इस तरह की प्रवृत्ति लोकतांत्रिक मूल्यों के आधार पर सत्ता के विकेंद्रीकरण की अवधारणा से मेल नहीं खाती है। इसी कारण बच्चों के लिए स्थानीय प्रत्याशी के साथ स्थानीय मुद्दे भी गौण हैं। उदाहरण के लिए वर्धा के दूरदराज गांव में रहने वाला किशोर इस आधार पर किसी दल-विशेष की सराहना या आलोचना करता है कि उसने नागपुर महानगर में क्या किया। वह इस बात पर बल नहीं देता कि उसके गांव या समुदाय की प्रमुख समस्याएं क्या हैं? जिन्हें वह अपने स्थानीय प्रतिनिधि के सामने रखना चाहता है। इस तरह की स्थिति में उसके लिए वह किताबी ज्ञान भी किसी काम का नहीं है जहां कोई नागरिक अपने क्षेत्र विशेष की समस्याओं का समाधान करने की प्राथमिकता के आधार पर प्रत्याशी का चयन करता है।

राजनीतिक समाजीकरण के ताने-बाने में पूर्वधारणाएं

चुनावी राजनीति में प्रयोग किए जाने वाले भेद-भाव के संकेतकों से भी विद्यार्थी भली भांति परिचित थे। बच्चों ने बताया कि प्रत्याशी का चयन पैसे, जाति, धर्म और अधिवास के आधार पर होता है। साथ ही वे ये जोड़ना नहीं भूले कि इन आधारों पर प्रत्याशी चुनने से 'जीत की उम्मीद बढ़ जाती है' क्योंकि 'हर जाति चाहती है उसका आदमी जीते'। सभी समूहों ने कहा कि स्थानीय नेता के पढ़े-लिखे होने का कोई खास फर्क नहीं पड़ता क्योंकि 'वोट मुख्य नेता या बड़े नेता के नाम पर 'गिरता है' चुनाव किसी को लड़ा दो।' इन विचारों से भी स्पष्ट है कि राजनीतिक समाजीकरण के ताने-बाने में पूर्वधारणाएं अधिक सक्रिय हैं। जाति और धर्म के जो विभेदक चुनाव में हमारे मत को प्रभावित कर रहे हैं निश्चित रूप से ये हमारी अन्य गतिविधियों को भी उतना ही प्रभावित करेंगे। ये पूर्वधारणाएं 'नागरिकता की

शिक्षा' के लिए भी बाधक हैं। क्या हममें से कोई यह चाहता है कि भावी पीढ़ी अपने-पराए के भेद को कायम रखने वाली हो? सहभागी बच्चों के अनुसार चुनावी सभाओं से जनता का मन नहीं बदलता। इसका फायदा केवल इतना होता है कि जो इनमें जाता है उसे पैसे मिल जाते हैं। ये विचार प्रमाण हैं कि कहीं न कहीं मत निर्माण की प्रक्रिया में शक्ति का केन्द्रीकरण, अस्मितामूलक आधार जैसे- जाति, धर्म, और पैसे का लालच मुख्य भूमिका निभा रहे हैं। ये कारक विवेक को परिष्कृत करने और वृहत्तर हित को देखने की दृष्टि को सीमित करते हैं। यदि भावी पीढ़ी भी इसी दिशा में आगे बढ़ेगी तो वैचारिक संकीर्णता बढ़ती जाएगी जो किसी भी दृष्टि से समाज और राज्य के लिए हितकर नहीं होगी। इसी का प्रभाव है कि भागीदार विद्यार्थी कह रहे हैं कि- 'अपने को तो राजनीति पसंद नहीं है'। इस तरह के विचार शिक्षा में काम कर रहे लोगों के लिए चिंताजनक हैं। लोकतांत्रिक राज्य की व्यवस्था तो चुनाव से चलती है और चुनाव और राजनीति को नापसंद करने वाली भावी पीढ़ी कैसे नागरिक अधिकारों को क्रियान्वित करेगी यह विचारणीय है। इस संदर्भ में बर्टी (2005) का विचार उल्लेखनीय है जिनके अनुसार हम बच्चों को राजनीति का 'ज्ञान' देकर लोकतंत्र को सुरक्षित नहीं रख सकते हैं हमें विचार करना होगा कि कैसे सत्ता और राजनीति में सार्थक बदलाव के लिए व्यक्ति अभिप्रेरित हो। कैसे वे इसके लिए स्वयं आगे आएँ? कैसे वे पूर्वग्रह और राजनीतिक धारणाओं का सामना करें? इसके अभाव में वे इन पूर्वग्रह और धारणाओं को ही स्वीकृत व्यवहार मान लेते हैं। इसी कारण उनके लिए जाति के आधार पर मतदान, वादे पूरे न करना, सभा के लिए पैसे बांटना, प्रत्याशी चुनने में स्वच्छ छवि का ध्यान न रखना जैसी प्रवृत्तियाँ राजनीति का हिस्सा बन चुकी है।

नेताओं की छवियाँ

इस चर्चा के भागीदार बच्चों के विचारों से नेताओं की छवियों के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। नेताओं को वे दो वर्गों में रखते हैं। प्रथम, बड़े नेता, जिनमें वे मुख्यतः राष्ट्रीय नेताओं जैसे- नरेन्द्र मोदी, राहुल गांधी, सोनिया गांधी, नितिन गडकरी आदि के नाम गिनाते हैं। इन नेताओं के प्रति वे अपनी पसंद और नापसंद व्यक्त करते हैं लेकिन उनके लिए किसी खास प्रवृत्ति जैसे- जनता की उपेक्षा, काम न करना आदि का सामान्यीकरण नहीं करते हैं। वे इनके व्यक्तिगत गुणों की सराहना करते हैं। यहां यह भी रेखांकित करना आवश्यक है कि बच्चे इन नेताओं के लिए मीडिया द्वारा प्रयुक्त किए जा रहे मुहावरों का उल्लेख करते हैं। दूसरे, स्थानीय नेता, जो लोकसभा, विधानसभा, स्थानीय पंचायतों आदि के प्रतिनिधि हैं या चुनाव लड़ रहे हैं। ये बच्चे स्थानीय नेताओं को उनकी संपत्ति, गाड़ियों, घरों की संख्या, समर्थकों की भीड़ आदि के सापेक्ष देखते हैं। वे अपने स्थानीय नेताओं के बड़े उद्योगों व महाविद्यालयों आदि का उल्लेख करते हैं। नेता के लिए संपत्ति की अपरिहार्यता के बारे में एक बच्चे का यह बयान देखने लायक है कि 'नेता बनने के लिए पैसे की जरूरत होती है क्योंकि 'साथ रहने वालों में बांटना होता है', 'रैली करनी होती है' आदि। इसी क्रम में नेताओं के धन के स्रोत के बारे में वे बताते हैं कि नेताओं के पास कालाधन होता है। यह कालाधन जनता का होता है। कालाधन की परिभाषा करते हुए बच्चों ने बताया कि 'जो धन दिखता नहीं है' जिसे नेता घर में छुपाकर रखते हैं। यह भी उल्लेखनीय रहा कि नेताओं के बारे में बच्चे मानते हैं कि वे महानगरों में रहते हैं। वे कभी-कभी गांव आते हैं। ये बातें प्रमाण हैं कि सत्ता का प्रतीक पूंजी और आम आदमी से दूरी बनती जा रही है। नेता और प्रकारांतर से सरकार ऐसी संस्था के रूप में मान्य नहीं है जो आम नागरिक के लिए कार्य करे। इन सामाजिक प्रस्तुतियों और स्वीकृतियों के प्रति बच्चों के मन में कोई उलझन या द्वंद्व नहीं है। वे इसे एक चलन मान चुके हैं। यदि उक्त विद्रूपता सच्चाई है, चलन है तो इसके विकल्प पर बातचीत या संवाद का न होना इससे बड़ी समस्या है। न तो स्कूल और न ही परिवार इस तरह के मुद्दों पर किसी वैकल्पिक दृष्टि से बच्चों को परिचित करा रहे हैं। वे भी यथासंभव इन कठोर प्रश्नों पर मौन हैं। जैसाकि भागीदार बच्चों ने बताया कि उनके घरों में यह चर्चा होती है कि किसे मत दिया जाए पर यह चर्चा नहीं होती कि जिसे दिया जा रहा है उसे क्यों दिया जाए। बच्चों ने यह भी बताया कि उनके स्कूलों में चुनाव के बारे में चर्चा न के बराबर है। चर्चा उसी सीमा तक है जिस सीमा तक पाठ्यपुस्तकें इसके लिए अवकाश

देती हैं। व्हाइट, ब्रुस और रिची (2000) ने इस तरह की प्रवृत्ति को बच्चों में राजनीति के प्रति उदासीनता का प्रमुख कारण माना है। इन्होंने भी अपने अध्ययन में पाया कि नेताओं की अविश्वसनीय छवियां राजनीतिक समाजीकरण में राजनीति के प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति पैदा करती हैं। इसका परिचय प्रस्तुत अध्ययन के भागीदारों में भी देख सकते हैं। नेताओं की विश्वसनीयता का हास यहीं नहीं थमता। बच्चों ने दलबदलू नेताओं की लंबी लिस्ट भी साझा की और कहा कि 'हर नेता मजबूत पार्टी में चला जाता है।' उनके लिए पार्टी की मजबूती की कसौटी जनकल्याण या उसके कार्यों का मूल्यांकन न होकर एक भिन्न कसौटी है। इस कसौटी के बारे में अलग-अलग समूहों ने बताया कि 'मजबूत पार्टी वह पार्टी होती है जिसका नेता मजबूत होता है। जो सत्ता में होती है। जिसके पास पैसा होता है। इन्हीं कारणों से मजबूत पार्टी जीतती है।' ऐसी स्थिति में स्पष्ट होता है कि बच्चों के लिए राजनीति महत्व का मुद्दा है लेकिन वे इसके महत्व को सत्ता, नियंत्रण और प्रभाव के रूप में देख रहे हैं। विचारणीय है कि ऐसी समझ के साथ बड़े हो रहे भावी नागरिक 'सत्ता' और 'लोकतंत्र' के अंतर को कैसे कायम रखेंगे? कैसे वे संसदीय लोकतंत्र में हर नागरिक के मूल्य व अधिकार की परिकल्पना करेंगे?

इन्हें मालूम है कि 'देश का भविष्य चुनाव से तय होता है' लेकिन संसदीय लोकतंत्र में उनकी आस्था कम होती जा रही है। हालत यह है कि कुछ विद्यार्थियों ने कहा कि जहां चुनाव की चर्चा होती है वे वहां से हट जाते हैं। कुछ ने कहा इसीलिए हम घर देर से जाते हैं कि हमें चर्चा सुननी न पड़े। अपनी अरुचि के बारे में बच्चों ने कहा कि 'जब सब चोर हैं तो किसे वोट करें।' 'ज्यादातर नेता बुरे हैं, उनमें से जो कम बुरा है उसे चुनेंगे। चुनावी प्रक्रिया की इस तरह की यथार्थवादी समझ हमारे लिए चिंताजनक है। हम केवल मतदान के प्रतिशत के कम होने या अधिक होने से संतुष्ट नहीं हो सकते। बच्चों के ये विचार संकेत हैं कि आगे आने वाले दसक सालों में हमारे सामने सबसे बड़ी चुनौती संसदीय लोकतंत्र की प्रतिष्ठा को कायम रखने की होगी। यह किसी एक की जिम्मेदारी नहीं है। न ही इस प्रतिष्ठा के लोप के लिए कोई एक जिम्मेदार है। सहभागी बच्चों के अनुसार चुनावी सभाओं से जनता का मन नहीं बदलता। इसका फायदा केवल इतना होता है कि जो इनमें जाता है उसे पैसे मिल जाते हैं। ये विचार प्रमाण हैं कि कहीं न कहीं मत निर्माण की प्रक्रिया में शक्ति का केन्द्रीकरण, अस्मितामूलक आधार जैसे- जाति, धर्म, और पैसे का लालच मुख्य भूमिका निभा रहे हैं। ये कारक विवेक को परिष्कृत करने और वृहत्तर हित को देखने की दृष्टि को सीमित करते हैं। यदि भावी पीढ़ी भी इसी दिशा में आगे बढ़ेगी तो वैचारिक संकीर्णता बढ़ती जाएगी जो किसी भी दृष्टि से समाज, अर्थव्यवस्था और राज्य के लिए हितकर नहीं होगी।

मीडिया : राजनीतिक समाजीकरण का सर्वाधिक प्रबल माध्यम

यह कार्य बताता है कि राजनीतिक समाजीकरण को लेकर परिवार, समुदाय और स्कूल की तुलना में मीडिया का प्रभाव सर्वाधिक है। परिवार के संदर्भ में देखा जाए तो भागीदारों ने साझा किया कि उनके परिवारों में राजनीतिक पार्टी की पसंद या नापसंद और चुनाव में किसके पक्ष में मत किया जाए? जैसे मुद्दों पर आपस में और बच्चों से न के बराबर चर्चा होती है। यह भी पाया कि परिवार का मुखिया- ज्यादातर मामलों में पिता या दादाजी- ही परिवार के सभी वयस्क सदस्यों को निर्देशित करते हैं कि किसके लिए वोट किया जाए। बच्चों ने यह भी बताया कि उनके अभिभावक भी राजनेताओं और राजनीतिक दलों से ज्यादा उम्मीद नहीं रखते हैं। परिवार के वयस्कों की यह राजनीतिक उदासीनता बच्चों तक स्थानान्तरित हो रही है। यह प्रवृत्ति राजनीतिक भागीदारी के लिए प्रेरित नागरिकों को तैयार नहीं करती है। इस स्थिति में शासक-शासित संबंध कायम रहते हैं और अनुकरण के आधार पर मतदान जैसे नागरिक दायित्व राजनीतिक निर्णय में तब्दील होते हैं। इसी का प्रभाव दबाव के आधार पर होने वाले मतदान में देख सकते हैं। इस चर्चा में शामिल कुछ भागीदारों ने बताया कि जनसंपर्क के दौरान स्थानीय नेताओं द्वारा पारिवारिक संबंधों खासकर जाति के दबाव के आधार पर मतदान के लिए बाध्य किया जाता है। हर समूह ने बताया कि उनके स्कूल में चुनाव

पर, मतदान के लिए प्रत्याशी चयन पर कोई चर्चा नहीं होती है। यह एक निराशाजनक स्थिति है जबकि स्कूल को तो ऐसी संस्था माना जाता है जहां सोद्देश्य रूप से नागरिकों की तैयारी की जाती है। स्कूलों का दायित्व केवल जानकारी देना नहीं है उन्हें बच्चों को यह भी समझाना होगा कि वे कैसे राजनीतिक निर्णय लें? स्कूल की यह भूमिका सोशल मीडिया के बढ़ते प्रभाव में और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। इस चर्चा में यह भी पाया गया कि चुनाव, प्रत्याशी, दलों की नीतियों की जानकारी के लिए भागीदारों का मुख्य स्रोत सोशल मीडिया बनते जा रहे हैं। इसके माध्यम से पार्टी, नेता और चुनाव की छवियां तैयार हो रही हैं। दोस्तों के समूह में इन्हीं सूचनाओं पर चर्चा होती है। सोशल मीडिया पर प्रसारित सूचनाएं और सम-समूह में चर्चा भागीदारों के अभिमत और विचार निर्माण का मुख्य स्रोत बन चुकी हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि राजनीतिक दलों से संबंधित सामाजिक समूहों की ऑनलाइन सदस्यता के द्वारा भी वे राजनीतिक दलों से जुड़ रहे हैं। वे प्रोपेगैंडा, अफवाहों या विश्वसनीय और वैध सूचनाओं के फर्क से अपरिचित हैं। हर समूह ने प्रत्याशी, जाति, विचारधारा और धर्म से संबंधित अफवाहों को साझा किया। स्पष्ट है कि इन बच्चों और किशोरों को 'सूचनाओं के ढेर' से डील करना सिखाना होगा। यह विवेक देना होगा कि बिना सूचना की वैधता और विश्वसनीयता जांचे उसके आधार पर निर्णय न लें। इवॉन (2015) ने राजनीतिक संस्कृति के पोषण में मीडिया की इस भूमिका का आकलन करते हुए कहा है कि मीडिया द्वारा प्रचारित सूचनाओं के आधार पर निर्णय लेते समय निर्णय लेने वाले को लगता है कि यह निर्णय वह खुद कर रहा है जबकि वास्तविकता यह होती है कि उसके माध्यम से मीडिया के मत को ही स्वीकृति मिल जाती है। हमें ऐसी 'नागरिक शिक्षा' देनी होगी जहां मीडिया के प्रभाव में निर्णय न हो बल्कि उसके प्रभाव का विश्लेषण और मूल्यांकन करने की क्षमता विकसित हो।

निष्कर्ष और निहितार्थ

बच्चों के साथ की गयी केन्द्रित समूह चर्चा स्पष्ट प्रमाण है कि राजनीतिक समाजीकरण केवल संसदीय लोकतंत्र से संबंधित तथ्यात्मक सूचनाओं का मसला नहीं है। न ही यह व्यक्तिगत उपलब्धि और गुणों से संबंधित है बल्कि समुदाय में, मीडिया में वृहत्तर परिवेश की राजनीतिक घटनाओं और प्रक्रियाओं से व्यक्ति, खुद का संबंध कैसा देखता है? इस दृष्टि का विकास है। इसे एक उदाहरण की मदद से समझ सकते हैं। सरकार का कार्यकाल, सरकार बनने की प्रक्रियाएं, सांसद की योग्यता और दायित्व, नागरिक के अधिकार और कर्तव्य आदि की जानकारी किताबों में दी गई है। इनके बारे में कक्षा में पढ़ाया भी जाता है लेकिन किन मुद्दों के साथ चुनाव हो रहे हैं? किन कसौटियों के सापेक्ष प्रत्याशियों का मूल्यांकन किया जा रहा है। मूल्यांकन करने वाले की जागरूकता का स्तर क्या है? ये पक्ष भी राजनीतिक समाजीकरण को प्रभावित करते हैं। अब हमारे लिए केवल यह जानना पर्याप्त नहीं है कि उन्हें कितनी तथ्यात्मक जानकारी है बल्कि इसके आधार पर या इसके बिना वे व्यवस्था के प्रति क्या अभिमत रखते हैं? उससे खुद के संबंध को कैसे परिभाषित करते हैं? मीडिया उनके अभिमत को कैसे प्रभावित कर रहा है? जैसे प्रश्नों पर विचार करना होगा। यह भी ध्यान रखने योग्य है कि तथ्यात्मक जानकारी जैसे-सांसद का नाम, सदस्यों की संख्या आदि के आधार पर राजनीतिक ज्ञान का आकलन हो सकता है लेकिन राजनीति या चुनावी व्यवहार और निर्णय इससे स्वतंत्र है। शिक्षण का यह भी एक पक्ष है कि इस स्वतंत्र निर्णय में 'आलोचनात्मक विवेक' के प्रयोग के लिए विद्यार्थियों को तैयार किया जाए। उदाहरण के लिए इस चर्चा के प्रतिभागियों में देशभक्ति की परिभाषाओं और संवैधानिक प्रतिबद्धता के बीच विरोधाभास देखने को मिला। बच्चों और युवाओं के लिए देश की सुरक्षा और देशभक्ति का आशय शत्रु देश से मुकाबला था जबकि अवसरों की समानता, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, भेद-भाव का अंत जैसे मुद्दों पर वे मौन थे। वे राष्ट्रीय नेताओं के प्रति इतने आग्रही थे कि स्थानीय मुद्दों को संज्ञान में नहीं ले पा रहे थे। ऐसा नहीं है कि यह कोई गलत प्रवृत्ति है पर यह तो सचेत करना ही होगा कि देश-काल विशेष में किस तरह के मूल्यां, मुद्दों और अपेक्षाओं को राजनीति द्वारा साकार करना चाहते हैं? उसके लिए हमारे निर्णय कैसे स्थानीय और राष्ट्रीय संदर्भ में संतुलित हों? कैसे हम निर्णयों के दूरगामी प्रभावों का आकलन करें। इसके लिए वे क्या जानते हैं? से संतुष्ट नहीं होना

है। वे कैसे निर्णय लेते हैं? उनके निर्णय को प्रभावित करने वाले कारक कौन से हैं? वे किन स्रोतों, कारकों और माध्यमों के आधार पर निर्णय लें? जैसे प्रश्नों पर विचार करना होगा। हमें उनके औपचारिक अनुभवों में स्वयंसेवा, समुदाय को समझना, सामुदायिक सहभागिता जैसे कार्यों में सहभागिता को बढ़ाना होगा तभी वे एक परिपक्व राजनीतिक समझ वाले नागरिक बन पाएंगे। इन्हें मानवाधिकार, पर्यावरण, सांस्कृतिक विविधता आदि के प्रति जागरूक करने के साथ राजनीतिक और लोकतांत्रिक प्रतिरोध का प्रशिक्षण भी देना होगा। जिस तरह से गणित और विज्ञान जैसे विषयों में तर्क, समस्या समाधान, ज्ञान के अनुप्रयोग और प्रभावशाली अभिव्यक्ति का उपयोग करते हैं वैसे ही राजनीतिक भागीदारी जैसे महत्वपूर्ण मुद्दे पर भी विचार करना होगा। अन्यथा इस बहुलतावादी लोकतांत्रिक देश में भावी पीढ़ी का राजनीति के प्रति उपेक्षा भाव इस देश की आत्मा और अस्मिता को कमजोर ही करेगा।

आभार : लेखक आंकड़ों के संकलन और ट्रांसक्रिप्शन में सहयोग के लिए श्री संदीप कुमार (जे.पी.एफ., इरिक शोध परियोजना, म.गां.अं.वि. का आभारी है।)। ◆

लेखक परिचय : सहायक प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा।

संपर्क : 7057392903; rishabhrkm@gmail.com

संदर्भ :

- Berti, A.E. (2005). Children's Understanding of Politics. In M. Barrett and E.B. Barrow (eds.). *Children's Understanding of Society*, pp. 69-103.
- Emler, N. and Frazer, E. (1999). Politics: The Education Effect. *Oxford Review of Education*, 25 (2). pp. 251-273.
- Iovan, M. (2015). The Political Culture: Political Socialization and Acculturation, *Journal of Legal Studies*, 16(29), 26-47.
- Sears, D.O. and Valention, N.A. (1997). Political events as catalysts for preadult socialization, *The American Political Science Review*, 91(1), pp. 45-65.
- White, C., Bruce, S. and Ritchie, J. (2000). *Young people's politics: Political interest and engagement amongst 14-24 year olds*. London: York Publishing Service.